International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 13-05-2024, Accepted: 05-06-2024, Published: 28-06-2024
Volume 10, Issue 2, 2024, Page No. 28-30

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना के प्रतिमान

कंवराज राम
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, गिड़ा, बालोतरा, राजस्थान, भारत

सारांश
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी आलोचना के वह शिखर पुरूष हैं जिन्होंने हिन्दी आलोचना को सर्वप्रथम एक मौलिक एवं सैद्धान्तिक स्वरूप प्रदान किया। शुक्ल जी ने हिंदी आलोचना के अव्यवस्थित स्वरूप एवं गुण, दोष निरूपण पद्धति को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जांचा परखा और हिन्दी आलोचना को प्रौढ़ता प्रदान की। शुक्ल जी ने अपनी आलोचना में जीवन की अनुभूति के साथ–साथ साहित्य के विभिन्न शास्त्रों का अभ्यास किया। उन्होंने साहित्यिक आलोचना के क्रम में भारतीय एवं पाश्चात्य चिन्तन पद्धतियों से भारतीय जीवन मूल्यों को विश्लेषित किया। शुक्ल जी ने साहित्य, कला, एवं काव्य के सैद्धान्तिक विवेचन में शास्त्रीय एवं स्वतन्त्र विचारों पर विशेष ध्यान दिया। प्रथम बार शुक्ल जी ने प्रकृति के सौन्दर्य पर साहित्यिक दृष्टिकोण से विचार किया। उन्होंने साहित्य में रस के महत्व को विवेकपूर्ण ढंग से स्थापित किया तथा बताया कि 'हृदय की मुक्तावस्था ही रस दशा' है। साहित्य में लोक मंगल की भावना शुक्ल जी को बहुत प्रिय थी। इसीलिए वह काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था की बड़ी रोचक एवं नवीन व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। साधारणीकरण पर मौलिक ढंग से विचार करते हुए शुक्ल जी पंडितराज जगन्ननाथ के सिद्धान्त पर नवीन उद्भावना प्रस्तुत करते हैं। काव्य का विवेचन करते हुए वह मानते हैं कि 'सच्चा कवि वही है जिसको लोक हृदय की पहचान' है। 'रहस्यवाद' पर विचार करते हुए शुक्ल जी ने 'छायावाद' को उसी आलोक में देखने की कोशिश की तथा उसका संबंध काव्य वस्तु से जोड़ते हुए अतृप्ति काम भावना, प्रेम एवं वासना आदि भावों की व्यंजना का माध्यम माना। शुक्ल जी अपनी सैद्धान्तिक आलोचना के क्रम में काव्य के शिल्प पर विशेष ध्यान देते हैं। वह काव्य की भाषा के अर्थ विधान, अलंकार के स्वरूप एवं प्रयोजन तथा छन्द विधान के महत्व पर बल देते हैं।

मूल शब्दः आलोचना, दृष्टिकोण, इतिहास, साधारणीकरण, कल्पना, मुक्तावस्था, मर्यादा, समीक्षा, छायावाद, अभिव्यंजनावाद, सामाजिक विकास, प्रत्यक्षीकरण, वक्रोक्ति

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संस्कृत काव्य परंपरा की गुण–दोष विवेचन की पद्धति से हिन्दी आलोचना को मुक्त किया। उन्होंने रचना एवं रचनाकार के सापेक्ष ही हिन्दी आलोचना को आगे बढ़ाया। शुक्ल जी ने हिन्दी आलोचना पर पड़ने वाले यूरोपीय प्रभाव की भी पड़ताल की तथा कला कला के लिए एवं क्रोचे के अभिव्यंजनावाद की आलोचना करते हुए आई.ए.रिचडर्स का समर्थन भी किया। शुक्ल जी ने अपनी व्यावहारिक आलोचना के क्रम में तुलसी, सूर, जायसी, पर विस्तार से चर्चा की। उन्होंने 'हिन्दी शब्द सागर' की भूमिका के रूप में रचे हिन्दी साहित्य के इतिहास में हिन्दी आलोचना की परंपरा एवं इतिहास को समीक्षा हेतु सबके समक्ष प्रस्तुत किया। शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों को उनके कालखण्डों के अनुसार वैज्ञानिकता के साथ व्यवस्थित किया। उन्होंने इतिहास लेखन में विभिन्न काव्य धाराओं का मूल्य भी निर्धारित किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने मौलिक चिन्तन द्वारा रचना के मूल्यांकन का स्वतन्त्र मार्ग निर्मित किया। शुक्ल जी का चिन्तन भारतीय जीवन दृष्टि से पूरी तरह प्रभावित है। तुलसी उनके प्रिय कवि हैं। वह इसलिए भी कि भारतीय समाज के लिए तुलसी काव्य प्रेरणा का बहुत महत्वपूर्ण विषय है।

अध्ययन का उद्देश्य

शुक्ल जी ने आलोचना के सैद्धान्तिक प्रतिमान आज भी हिन्दी आलोचना जगत में मील के पत्थर हैं। शुक्ल जी ने जिस तरह भारतीय एवं पाश्चात्य आलोचना दृष्टियों के बीच समन्वय स्थापित किया वह अनत्र दुर्लभ है। शुक्ल जी ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लिखा। शुक्ल जी ने उच्च कोटि की रसग्राह्यता थी। वह अपनी आलोचना के द्वारा काव्य एवं साहित्य, संस्कृति एवं अन्य कलाओं के सामाजिक रिश्ते की पहचान स्थापित की। शुक्ल जी ने लोक धर्म एवं लोक मंगल की अपनी अवधारणा द्वारा रचना, रचनाकार एवं समाज के आपसी रिश्तों की खोज की। शुक्ल जी के लिए हिन्दू समाज व्यवस्था एवं आदर्शवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। इस प्रकार शुक्ल जी के सैद्धान्तिक प्रतिमान द्वारा आलोचना की विभिन्न दृष्टियों पर प्रकाश डालना इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य है।

साहित्यवलोकन

शुक्ल जी के आलोचना के सैद्धान्तिक प्रतिमानों को निर्धारित करने में उनके निबंध संग्रहों चिन्तामणि भाग एक एवं दो, गोस्वामी तुलसीदास, जायसी ग्रन्थावली, सूरदास, हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया गया है। अध्ययन के इस क्रम में डॉ. रामविलास शर्मा की पुस्तक 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना' विश्वनाथ त्रिपाठी की 'हिन्दी आलोचना' आदि महत्वपूर्ण साहित्य का अवलोकन किया गया है।

विषयवस्तु का विवेचन

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि भारतीय अथवा पाश्चात्य चिन्तन पद्धतियों का ही सहारा नहीं लेती बल्कि वह एक अपनी सृजनशीलता के लिए स्वतंत्र मार्ग निर्मित करती है। शुक्ल जी 'साधारणीकरण एवं व्यक्ति वैचित्रयवाद' पर विचार करते हुए कवि कर्म की परमसिद्धि भाव योग के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वह मानते हैं ''जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबसे उसी भाव का अवलम्बन हो सके तब तक उसमें रसोदबोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती । इसी रूप में लाया जाना हमारे यहाँ 'साधारणीकरण' कहलाता है। यह सिद्धान्त यह घोषित करता है कि सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय को देख सकें। इसी लोक–हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस–दशा है।''[1] सहृदय के मन में भावों का जागरण काव्य के रसास्वादन पर निर्भर है। जीवन के विभिन्न कार्य व्यापारों में

रसानुभूति तभी होती है जब आलम्बन के समक्ष विषय प्रस्तुत होता है। शुक्ल जी साधारणीकरण को जीवन के यथार्थ से जोड़ते हैं। उनके लिए कविता अमीरों की शौक का चीज नहीं हो सकती। वह मनोरंजन का विषय भी नहीं है। वे कलावादियों की आलोचना करते हुए कविता को 'सजावट या तमाशा' भी नहीं मानते। शुक्ल जी का लोक हृदय अमीरों का हृदय नहीं है।

शुक्ल जी 'प्रत्ययबोध, अनुभूति एवं वेग युक्त प्रवृति के संश्लेष' को 'भाव' मानते हैं। मूल मनोविकार, उसकी आन्तरिक प्रक्रिया व उसकी बाहरी अभिव्यंजना भाव के प्रमुख पक्ष हैं। कवि कर्म विभाव एवं भाव दोनों पक्ष में होता है। काव्य में विभाव ही प्रमुख रूप से उपस्थित रहता है। कवि कल्पना या भावों के प्रकृत आधार द्वारा प्रत्यक्षीकरण करते हुए तथ्य प्रस्तुत करता है। शुक्ल जी विभाव के सम्पूर्ण चित्रण के लिए कल्पना के महत्व को स्वीकार करते हैं। कल्पना का कार्यक्षेत्र रस का आधार खड़ा करने वाला विभावन है। शुक्ल जी कल्पना को भी एक मर्यादा में बांधना आवश्यक समझते हैं। पाश्चात्य समीक्षकों ने 'कल्पना और व्यक्तित्व' पर अधिक जोर दिया जिससे काव्य के अन्य पक्ष उपेक्षित हो गये। शुक्ल जी मानते हैं कि ''कल्पना काव्य का बोध पक्ष है। कल्पना में आयी रूप–व्यापार–योजना का कवि या श्रोता को अंतः साक्षात्कार का बोध होता है। पर इस बोध पक्ष के अतिरिक्त काव्य का भाव पक्ष भी है।''[2] भारतीय दृष्टि भावपक्ष को प्रधानता देती है और उस सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करती है। पाश्चात्य समीक्षकों का ध्यान भावपक्ष पर उतना नहीं है जितना की बोध पक्ष पर है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के लिए हृदय की मुक्तावस्था रस दशा है। मुक्तावस्था में मनुष्य अपने बन्धन से मुक्त होकर लोक की सामान्य भावभूमि पर अवस्थित हो जाता है। यहाँ व्यक्ति का हृदय लोक हृदय में विलीन हो जाता है। रस की दशा में व्यक्ति को अपनी पृथक सत्ता का अहसास नहीं रहता। शुक्ल जी लिखते हैं कि ''काव्य में प्रस्तुत विषय को हम अपने व्यक्तित्व से सम्बद्ध रूप में नहीं देखते, अपनी योग–क्षेम–वासना की उपाधि से ग्रस्त हृदय द्वारा ग्रहण नहीं करते, बल्कि निर्विशेष, शुद्ध और मुक्त हृदय द्वारा ग्रहण करते हैं। इसी को पाश्चात्य समीक्षा पद्धति में अहम् का विसर्जन और निःसंगता कहते हैं।''[3] शुक्ल जी रसानुभूति की बौद्धिक व्याख्या को महत्व देते हैं। इसीलिए वह सूर, तुलसी, जायसी की समीक्षा करते हुए रसवादी पदावली का प्रयोग भी करते हैं। उनके लिए 'नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य के लिए अद्वितीय वस्तु है'। शुक्ल जी का दृष्टिकोण वैज्ञानिक है, प्रगतिशील है। शुक्ल जी आलोचक के साथ–साथ एक इतिहासकार भी हैं। विश्वनाथ त्रिपाठी शुक्ल जी का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं कि ''पं. रामचन्द्र शुक्ल ने अपने समय में उपलब्ध वैज्ञानिक जानकारी हासिल की थी, अनेक साहित्येतर विषयों का गम्भीर अध्ययन करके उन सबके प्रकाश में साहित्य की समीक्षा की थी या यों कहिए की जीवन की संगति में साहित्य को बिठलाया था। इस पृष्ठ भूमि के बिना यथार्थ को देखने की निराविल एवं अचूक दृष्टि की प्राप्ति असंभव थी।''[4] शुक्ल जी छायावाद एवं रहस्यवाद से प्रभावित कविताओं के नये सौंदर्य का विरोध करते हैं। उनके लिए छायावाद व रहस्यवाद पश्चिम की उधार की वस्तु है। शुक्ल जी का मानना है कि इन दोनों में जीवन जगत व लोक मंगल के बीच व्यापक संबंधों का अभाव है। शुक्ल जी के लिए रिचर्डस प्रिय इसलिए हैं कि उन्होंने ब्रेण्डले के 'कला के लिए कला' के सिद्धांत का विरोध किया। शुक्ल जी मानते हैं कि जगत और जीवन ही काव्य की सीमा है। उसके बाहर का प्रस्तुतीकरण असली नहीं है। रिचर्डस के लिए कला का संबंध नैतिकता से है। नैतिकता मूल्यांकन के प्रतिमानों को प्रभावित करती है। शुक्ल जी का भी काव्य में नैतिकता के प्रति आग्रह बना हुआ है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इटली के समीक्षक क्रोचे के 'अभिव्यंजनावाद' के साथ–साथ 'कला कला के लिए' सिद्धान्त का विरोध किया। क्रोचे के विचार में काव्य ज्ञान स्वरूप है। क्रोचे कला की निराकार सत्ता को मानते थे। शुक्ल जी अभिव्यंजनावाद को वक्रोक्ति का यूरोपीय उत्थान के रूप में देखते थे। वह यह भी मानते थे कि मार्मिकता से इसका कोई संबंध नहीं है। शुक्ल जी अभिव्यंजनावाद को वाग्वैचित्र्यवाद का एक रूप भी मानते थे। शुक्ल जी के अनुसार ''इसमें अभिव्यंजना अर्थात् किसी बात को कहने का ढंग ही सब कुछ है, बात चाहे जो या जैसी हो अथवा कुछ ठीक ठिकाने की न भी हो। काव्य में जिस वस्तु या भाव का वर्णन होता है, वह इस वाद के अनुसार उपादान मात्र है, समीक्षा में उसका कोई विचार अपेक्षित नहीं। काव्य में मुख्यवस्तु है वह आकार या साँचा जिसमें वह वस्तु या भाव डाला जाता है। अभिव्यंजना के ढ़ंग का अनूठापन ही सबकुछ है, जिस वस्तु या भाव की अभिव्यंजना की जाती है वह क्या है, कैसा है, यह काव्य क्षेत्र के बाहर की बात है।''[5]

शुक्ल जी की अनुदित रचना 'विश्वप्रपंच है जो हैकल की 'रिडल ऑफ द यूनीवर्स' का अनुवाद है। प्राणी विज्ञान संबंधी इस रचना की भूमिका में शुक्ल जी ने माना है कि विकासवाद सभी विधाओं मनोविज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र से प्रभावित रहा है। शुक्ल जी लिखते हैं कि ''आजकल ऐसा ही कोई होगा जो इतिहास लिखने में इस बात का ध्यान न रखता हो कि किसी जाति के बीच ज्ञान, विज्ञान, आचार, सभ्यता इत्यादि का विकास क्रमशः हुआ है।''[6] शुक्ल जी यह मानते हैं कि धर्म या कर्तव्य की चेतना का विकास लोकरक्षा या आत्मरक्षा की भावना से उत्पन्न हैं एक रूप से अनेक रूप या सरल रूप से जटिल रूप से विकसित होना विकास का ही एक सिद्धांत है। शुक्ल जी आधुनिक मत का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि ''मनुष्य जाति असभ्य दशा से उन्नति करते–करते सभ्य दशा को प्राप्त हुई है। अत्यन्त प्राचीन लोगों को बहुत अल्प विषयों का ज्ञान था। धीरे–धीरे उसके ज्ञान की वृद्धि होती चली गई है। इसी प्रकार धर्मभाव भी पहले बहुत स्वल्प और सादे रूप में था, पीछे सामाजिक व्यवहारों की वृद्धि के साथ–साथ उसका भी अनेक रूपों में विकास होता गया।''[7] धर्म वह है जो लोक या समाज को धारण करता है तथा एक व्यवस्था कायम करता है। धर्म की व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था के लिए इसलिए आवश्यक रही है जिससे लोग अपने स्वार्थ एवं इच्छा को नियंत्रित रखें। जीवन में अच्छा आचरण भी इसका उद्देश्य रहा है। दूसरों के प्रति अन्याय व अत्याचार न करें। लोग पथभ्रष्ट न हों। धर्म एवं आचरण की व्याख्या लोक व्यवहार एवं सामाजिक विकास के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। अध्यात्म एवं परलोक की दृष्टि से इसकी व्याख्या वैज्ञानिक नहीं हो सकती। शुक्ल जी यह मानते हैं कि ''धर्म कोई अलौकिक, नित्य और स्वतंत्र पदार्थ नहीं है। समाज के आश्रय से ही उसका क्रमशः विकास हुआ है।''[8] समाज में परिवर्तन होता रहता है। समाज की उन्नति के साथ–साथ धर्म धीरे–धीरे विकसित होता रहता है तथा उसका स्वरूप बदलता रहता है।

निष्कर्ष

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने सर्वप्रथम मौलिक रूप से आलोचना के सैद्धान्तिक पक्ष की खोज की है। इसके लिए वह विज्ञान का पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर अपने दृष्टिकोण को वैज्ञानिक बनाते हैं। वह अपने विकासवाद के चिन्तन में पश्चिम के वैज्ञानिक अनुसंधान से परिचित होते हैं। अपने वैज्ञानिक चिन्तन के क्रम में वह वैज्ञानिक शब्दावली को भी समझने की कोशिश करते हैं। हर्बर्ट स्पेंसर के विकास सिद्धान्त के बहाने वे अणु जीवों, सजीव सृष्टि, सन्तानोन्पादन वंशवृद्धि, संतान, अणुजीव, किण्वन जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे भौतिक विज्ञान एवं जीवन विज्ञान के बीच संबंध भी स्थापित करते हैं। सजीव और निर्जीव द्रव्य के अनतर को भी वे स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार

शुक्ल जी आलोचना के सैद्धांतिक प्रतिमानों को वैज्ञानिकता के साथ लोकोन्मुख बनाते हैं। उनकी आलोचना दृष्टि इतिहास दृष्टि से अविच्छिन्न है। उनकी आलोचना का सैद्धान्तिक पक्ष सामाजिक सन्दर्भों से परिभाषित है। शुक्ल जी आलोचना की सैद्धान्तिकी गढ़ने के क्रम मे हेकल से लेकर आई.ए. रिचर्डस, ब्रैडले, क्रोचे, स्पिनगार्न, शेक्सपीयर, वर्डसवर्थ, गेले, स्काट, आदि के यूरोपीय समीक्षा सिद्धांतों करते हैं तथा आलोचना की भारतीय अवधारणा को स्थापित करते हैं। वह अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन में वाल्मीकि, भवभूति, कालिदास, तुलसीदास, सूरदास, एवं जायसी के सौन्दर्य का युग के अनुकूल विवेचन करते हैं। आलोचना की अपनी सीमाओं के कारण वह 'कबीर' की प्रतिभा एवं चिन्तन के साथ न्याय नहीं कर पाते। फिर भी उनकी आलोचना के सैद्धान्तिक प्रतिमान उस हिन्दी आलोचना का मार्ग प्रशस्त करते है जो लोकोन्मुख ही नहीं बल्कि प्रगतिशील भी है।

सन्दर्भ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि–भाग1, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2018. पृ.0134.
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि–भाग–1, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2018.पृ. 140
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि–भाग–1, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2018.पृ. 146
4. डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 1970, पृ. 62
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2013 पृ. 390.
6. डॉ. रामविलास शर्मा, लोक जागरण और हिन्दी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 97
7. डॉ. रामविलास शर्मा, लोक जागरण और हिन्दी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 98
8. डॉ. रामविलास शर्मा, लोक जागरण और हिन्दी साहित्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 99